प्रश्न—सांख्यदर्शन के अनुसार 'पुरुष' का स्वरूप क्या है? पुरुष एक है? अथवा अनेक? पुरुषसिद्धि में क्या प्रमाण है? प्रकृति से पृथक् पुरुष तत्व को मानने की आवश्यकता क्यों पड़ी?

What is Purush according to Sankhya? Is Purush one or many? What are the proofs for existence? and why should it be recognized as distinguished from प्रकृति?

उत्तर—सांख्य की भूमि में तीन प्रकार के तत्व हैं व्यक्त, अव्यक्त तथा ज्ञ। अव्यक्त को मूला प्रकृति या प्रधान कहते हैं। सारा जड़ जगत इसी जड़ प्रकृति का परिणाम है। महत तत्व से लेकर पञ्च महाभूत पर्यन्त सभी व्यक्त हैं। ये अपने कारण से उत्पन्न होने के कारण अनित्य, अव्यापक, क्रियाशील एवं अनेक हैं। ज्ञ चेतन है।

पुरुष का स्वरूप—

सांख्य में पुरुष आत्मा को कहते हैं। पुरुष प्राणवान्, सजीव एवं संवेदनशील है। यदि सांख्य दर्शन में पुरुष की योजना न होती तो प्रकृति एवं उससे उद्भूत विषयों की कोई उपयोगिता नहीं रह जाती। बिना पुरुष के विकास सम्भव नहीं।

आत्मा या पुरुष के अस्तित्व को सभी दार्शनिक मानते हैं। लोकव्यवहार में हम नित्य अनुभव करते हैं 'अहमस्मि' 'इदं ममास्ति'। दर्शन की दृष्टि से समस्त सांसारिक जीव का कोई अस्तित्व नहीं, किन्तु उनके भीतर जो सर्वव्यापक चेतन है, जिसे हम अन्तरात्मा या अन्तश्चेतना कहते हैं यथार्थतः वही सब कुछ है। अतः निर्जीव शरीर में आत्मा के आवास के कारण ही हम अपने पराये का अनुभव करते हैं। इसी के कारण व्यक्ति का अस्तित्व है। अतः इसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता। अस्वीकार करने पर भी हमें चेतन आत्मा की आवश्यकता होती है। अतः सांख्यदर्शन का मत है कि आत्मा का अस्तित्व स्वयं सिद्ध है। इसकी सत्ता सबको माननी पड़ती है।

आत्मा के अस्तित्व को स्वीकार करते हुए भी आत्मा के स्वरूप के सम्बन्ध में सभी दार्शनिक एकमत नहीं हैं। भौतिकवादी चार्वाक इत्यादि स्थूल शरीर को ही आत्मा की संज्ञा देते हैं—"देहः स्थौल्यादियोगाच्च स एवात्मा न चापरः"।

कुछ इन्द्रियों को, कुछ प्राण को, कुछ मन को आत्मा मानते हैं। बौद्ध दार्शनिक आत्मा को विज्ञान का प्रवाह मानते हैं। न्यायवैशेषिक तथा प्रभाकर आदि मीमांसकों के अनुसार आत्मा अचेतन द्रव्य है। यह विशेष अवस्थाओं में चैतन्य का आधार हो सकता है। यह मीमांसकों का कहना है कि आत्मा सचेतन पदार्थ है, किन्तु कभी-कभी अज्ञान से आवृत हो जाता हैं। इसलिये हमें अपने विषय में जो ज्ञान होता है वह अधूरा रह जाता है।

शांकर वेदान्त का मत है कि आत्मा एक है। वह विभिन्न शरीरों में अवस्थित है। वह शुद्ध, बुद्ध, नित्य और आनन्दस्वरूप है। वह सच्चिदानन्द कहा जाता है।

सांख्य के अनुसार पुरुष अर्थात् आत्मा ज्ञाता है। वह न तो शरीर है, न इन्द्रिय है, न मस्तिष्क है और न बुद्धि। वह सांसारिक विषयों से परे हैं। वह कभी ज्ञान का विषय नहीं होता। वह चैतन्य या आधारभूत द्रव्य नहीं, किन्तु स्वतः चैतन्य स्वरूप है। चैतन्य उसका गुण नहीं, स्वभाव है। वेदान्त आत्मा को आनन्द स्वरूप मानता है किन्तु सांख्य नहीं। वह आनन्द और चैतन्य को दो वस्तु मानता है, एक नहीं। पुरुष शुद्ध चैतन्य स्वरूप है जो प्रकृति के प्रभाव से परे है। ज्ञान उसका स्वभाव ही है। ज्ञान का विषय बदलता रहता है परन्तु चैतन्य का प्रकाश सदा एक ही रहता है। आत्मा निष्क्रिय तथा अविकारी है। विकार या क्रिया तो प्रकृति में उत्पन्न होती है। पुरुष उससे अछूता रहता है। वह स्वयंभू, नित्य तथा सर्वव्यापी सत्ता है। विषय या राग से यह प्रभावित नहीं होता। प्रकृति परिणामिनी है। उसमें प्रतिक्षण परिणाम हुआ करता है। अतः सभी विकार मन, बुद्धि, अहंकार आदि के धर्म हैं। मन, बुद्धि, अहंकार आदि को आत्मा समझना है, इस भ्रम में पड़कर पुरुष अपने को कर्त्ता और भोक्ता समझने लगता है। यही बन्धन का कारण है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि अनाश्रितत्व, अलिङ्गत्व, निरवयवत्व, स्वतन्त्रत्व, अत्रिगुणत्व, विवेकित्व, अविषयत्व, असामान्यत्व, चेतनत्व, अप्रसवधर्मित्व, साक्षित्व, कैवल्य, माध्यस्थ्य औदासीन्य, द्रष्टृत्व तथा अकर्तृत्व ये सभी धर्म ज्ञ-पुरुष-में हैं—

"त्रिगुणमविवेकि विषयः सामान्यमचेतनं प्रसवधर्मि।
व्यक्तं तथा प्रधानं तद्विपरीतस्तथा च पुमान्॥
तस्माच्च विपर्यासात्सिद्धं साक्षित्वमस्य पुरुषस्य।
कैवल्यं माध्यस्थ्यं द्रष्टृत्वमकर्तृभावश्च॥
तस्मात्तत्संयोगादचेतनं चेतनावदिव लिङ्गम्।
गुणकर्तृत्वे च तथा कर्तेव भवत्युदासीनः॥"

पुरुष की सत्ता की सिद्धि—

जिस प्रकार प्रकृति की सत्ता सिद्ध करने के लिये सांख्य विचारकों ने प्रौढ़ प्रमाण दिये हैं वैसे ही पुरुष की सत्ता के लिये भी। स्वकीय मत के उपन्यास के लिये ईश्वरकृष्ण पुरुष के अस्तित्व के संबन्ध में निम्नलिखित कारिका उद्धृत करते हैं—

"संघातपरार्थत्वात् त्रिगुणादिविपर्ययादधिष्ठानात्।
पुरुषोऽस्ति भोक्तृभावात् कैवल्यार्थं प्रवृत्तेश्च॥"

१. संघातपरार्थत्वात्—

संसार में यह देखा जाता है कि जितने संघात या मिश्रित या अवयवों से युक्त पदार्थ हैं, जैसे पलंग, आसन, अङ्गराग आदि सभी किसी अन्य के उपयोग के लिये होते हैं।

Scanned with CamScanner

उसी प्रकार अव्यक्त, महत्, अहंकार इत्यादि संघात होने के कारण किसी अपर के भोग के हेतु हैं। वह दूसरा अर्थात् पर जीवात्मा या बद्धपुरुष है जिसके भोग के लिये महद् इत्यादि व्यक्त हैं।

२. त्रिगुणादिविपर्ययात्—

सन्देह नहीं करना चाहिये कि जैसे शयन, आसन आदि संघात शरीर के लिये देखे जाते हैं उसी प्रकार ये अव्यक्तादि भी अपने से भिन्न दूसरे संघात का अनुमान कराते हैं, असंहत पुरुष का नहीं। अर्थात् 'यत्र यत्र संघातत्वं तत्र तत्र अन्य संघात-प्रयोजनसाधनत्वम्।' क्योंकि अव्यक्त इत्यादि संघात को दूसरे संघात के लिये मान लेने पर संघात होने के कारण इस दूसरे को तीसरे संघात के लिये मानना पड़ेगा। इसलिये इस अनवस्था के भय से पर अर्थात् पुरुष को संघात से भिन्न माना गया है। व्यक्त और अव्यक्त के त्रिगुणत्व, अविवेकित्व, सामान्यत्व, अचेतनत्व तथा प्रसवधर्मित्व साधारण धर्म कहे गये हैं। यदि ये धर्म व्यक्त और अव्यक्त के समान हैं तो प्रश्न होता है कि ये किसके असमान धर्म हैं जिसके ये असमान धर्म हैं, वह तत्व पुरुष ही है। इसीलिये ईश्वरकृष्ण के 'त्रिगुणादिविपर्ययात्' कहने का तात्पर्य यही है कि त्रिगुणादि से भिन्न भी कोई वस्तु है जो संघात रूप नहीं है और वही पुरुष है।

३. अधिष्ठानात्—

सभी जड़ पदार्थ किसी चेतन की सत्ता के द्वारा ही नियंत्रित होते हैं। रथ, मशीन आदि तभी अपनी क्रिया में प्रवृत्त होते हैं जब उनकी देखभाल तथा नियन्त्रण करने वाला कोई सारथि या कारीगर हो। उसी प्रकार त्रिगुणात्मक प्रकृति एवं उसके विकार जड़ होने के कारण ही किसी पुरुष के द्वारा प्रेरित होकर अपनी सृष्टि क्रिया का उत्पादन करते हैं। वे बिना पुरुष की सहायता के सृष्टि नहीं कर सकते। अतः वह अधिष्ठाता पुरुष ही है। न्याय दर्शन भी आत्मा की सिद्धि के लिये ऐसा ही सुदृढ़ प्रमाण प्रस्तुत करता है—

"प्रवृत्त्याद्यनुमेयोऽयं रथगत्येव सारथिः।
अहंकारस्याश्रयोऽयं मनोमात्रस्य गोचरः॥"

४. भोक्तृभावात्—

त्रिगुणात्मक वस्तुओं के लिये भोक्ता अपेक्षित होने से भी पुरुष की सत्ता सिद्ध होती है। भोक्ता का अर्थ है सुख, दुःख एवं मोहरूप वस्तुओं का भोग करने वाला। यह भोक्ता चेतन ही हो सकता है। अव्यक्त तथा व्यक्त जड़ होने से भोक्ता नहीं हो सकते हैं, ये तो भोग्य ही हैं। वही भोक्ता पुरुष या जीवात्मा है।

४. कैवल्यार्थं प्रवृत्तेश्च—

संसार में पुरुष दुःखों के अनवरत चक्र से मुक्ति प्राप्त करने की चेष्टा करते हैं। कैवल्य जिसे शास्त्र एवं दिव्यदृष्टि महर्षि त्रिविध दुःख की सार्वकालिक निवृत्ति के रूप में स्वीकार करते हैं वह बुद्धि इत्यादि के विषय में असम्भव है, क्योंकि दुःख इत्यादि तो इनका स्वरूप ही है। फिर ये अपने स्वरूप से वियुक्त या पृथक् कैसे किये जा सकते हैं? किन्तु बुद्धि इत्यादि से भिन्न कोई तत्व, जिसका स्वरूप दुःख इत्यादि नहीं है उससे पृथक् किया जा सकता है। इसलिये शास्त्रों एवं महामतिमान् महर्षियों ने 'कैवल्य के लिये प्रवृत्ति होने से भी' सुखदुःखात्मक तत्वों से भिन्न पुरुष की पृथक् सत्ता सिद्ध की

Scanned with CamScanner

है। अतः यदि हम चेतन पुरुष न माने तो मोक्ष निरर्थक हो जाता है। मोक्ष की अभिलाषा किसको होगी।

अतः उपर्युक्त सिद्धान्तों द्वारा पुरुष की सत्ता स्वयं सिद्ध है। पुरुष को न मानने का साहस चार्वाक आदि दार्शनिकों को नहीं करना चाहिये।

सांख्यदर्शन में पुरुष बहुत्व की सिद्धि—

सांख्य दर्शन में अनेक आत्माओं की सत्ता स्वीकार की गई है। सांख्यकारिका में पुरुष की अनेकता निम्नलिखित कारिका से सिद्ध की है—

"जन्ममरणकरणानां प्रतिनियमादयुगपत्प्रवृत्तेश्च।
पुरुषबहुत्वं सिद्धं त्रैगुण्यविपर्ययाच्चैव॥"

१. जन्ममरणकरणानां प्रतिनियमात्—

जन्म-मरण तथा करणों अर्थात् इन्द्रियों के व्यापार प्रतिपुरुष के भिन्न २ रूप से नियमित हैं। एक उत्पन्न होता है तो दूसरा मरता है। यह भेद इसी स्थिति में सम्भव है कि जब पुरुष अनेक हों। एक ही पुरुष होता तो ऐसी दशा देखने में न आती। अतः जन्म मरण एवं करण की सुव्यवस्था के लिये पुरुष बहुत्व को मानना अत्यन्त आवश्यक है। अतः यह कहना ठीक नहीं है कि एक पुरुष होने पर भी शरीर इत्यादि उपाधियों के भेद से भी व्यवस्था हो जायेगी, क्योंकि ऐसा होने पर तो हाथ, स्तन इत्यादि उपाधियों के भेद से भी व्यवस्था होने लगेगी। परन्तु हाथ के टूट जाने अथवा स्तन इत्यादि अवयवों के उत्पन्न होने से कोई युवती मृत या उत्पन्न नहीं होती। अतः इससे पुरुष बहुत्व की सिद्धि होती है।

२. अयुगपत्प्रवृत्तेः—

'एक साथ प्रवृत्ति न होने के कारण' भी प्रत्येक शरीर में पुरुष की भिन्नता सिद्ध होती है। "जैसे प्रत्येक रथ एक साथ प्रवर्तित न होने अथवा कथञ्चित वैसा होने पर भी एक ही प्रकार से प्रवर्तित न होने से प्रत्येक के प्रेरक या चालक व्यक्ति (सारथी) के अनेक या विभिन्न होने पर अनुमान होता है, वैसे ही प्रत्येक शरीर के एक साथ ही प्रवृत्त या क्रियाशील न होने से अथवा कथञ्चित वैसा होने पर भी एक ही प्रकार से प्रवृत्त न होने से प्रत्येक (शरीर) के प्रवर्तक या प्रेरक पुरुष के विभिन्न अथवा पृथक् होने का अनुमान होता है, भेद से भेद का ही, सामान्यतः क्रियाभेद से क्रियाश्रयों के भेद का ही अनुमान होता है, तथापि शरीरों के क्रियाभेद से पुरुषों के भेद का अनुमान इसलिये किया जाता है कि शरीर अचेतन होने से स्वयं तो प्रवृत्त होता नहीं, उसकी प्रवृत्ति तो चेतन पुरुष से अधिष्ठित होने के कारण उसके सान्निध्य से होती है। इसलिये यदि सभी शरीरों की एक साथ या एक सी प्रवृत्ति नहीं होती तो स्पष्ट है कि सभी में प्रवर्तक पुरुष एक ही नहीं भिन्न २ हैं। एक ही होता तो एक साथ और एक सी प्रवृत्ति होती।

३. त्रैगुण्यविपर्ययात्—

त्रैगुण्य-भेद के कारण भी पुरुषभेद सिद्ध होता है। मनुष्य देवताओं से नीचे हैं तथा पशु पक्षियों से ऊपर हैं। यदि देवता, मनुष्य, पशु, पक्षी, आदि सभी में एक ही आत्मा रहती तो विभिन्नता कैसे होती? यदि एक पुरुष होता तो एक ही साथ सब में सत्वगुण, रजोगुण या तमोगुण आते। परन्तु कोई सुखी, कोई दुखी और कोई उदासीन दिखाई पड़ता है। अतः पुरुष अनेक हैं।

Scanned with CamScanner

योग भी पुरुषबहुत्व की सिद्धि करता है, क्योंकि पुरुषार्थ के प्रयोजन से सृष्टि का विकास करने वाली प्रकृति पुरुष को अपने शुद्ध, बुद्ध मुक्त स्वरूप का बोध कराकर उस पुरुष के प्रति मोक्षरूप प्रयोजन को सिद्ध करके भी अन्य पुरुषों को मोक्षारूढ कराने के लिये तत्पर रहती है। अतः यदि पुरुष एक होता तो एक के विवेक ज्ञान से सबको विवेक ज्ञान हो जाता और सभी मोक्षापन्न हो जाते। परन्तु ऐसा नहीं होता है। अतः निम्नलिखित पतञ्जलि कृत सूत्र से भी पुरुष बहुत्व की सिद्धि होती है—"कृतार्थं प्रति नष्टमप्यनष्टं तदन्यसाधारणत्वात्।"

प्रकृति से भिन्न पुरुष की सिद्धि का हेतु—

प्रकृति और उसके कार्य सब जड़ हैं, दृश्य हैं, भोग्य हैं। उनकी दृश्यता, भोग्यता तभी बन सकेगी, जब उनका कोई द्रष्टा, भोक्ता हो। किसी द्रष्टा, भोक्ता के बिना उन्हें दृश्य भोग्य नहीं कहा जा सकेगा, अतः प्रकृति से भिन्न द्रष्टा, भोक्तारूप पुरुष की सिद्धि हो जाती है।